कुमाऊँनी संस्कृति की झलकः लोकगीत

विजय लक्ष्मी जोशी*

लोकगीत धरती के गीत हैं तथा धरती हम उसे चाहे जिस नाम से जानते हों, वही मिट्टी की धरती है। लोक गीतों को धरती पल्लवित, पुष्पित व सुरभित करती है। मानव किसी देश में, किसी अंचल में रहे, मानव है। उसके दुःख–सुख, उल्लास–वेदना, उसकी भावनाऐं, प्रसन्नता, उसके दर्द की कहानी, मौखिक रूप में लोकगीत के रूप में फूट पड़ती है। डॉ0 सदाशिव कृष्ण फड़के ने लोक गीत को परिभाषित किया है –लोकगीत विद्यादेवी के उद्यान के कृत्रिम फूल नहीं, वे मानो अकृत्रिम निसर्ग के श्वास–प्रश्वास हैं। सहजानंद में से उत्पन्न होने वाली क्षुति मनोहरत्व से सहजानंद में विलीन हो जाने वाली आनन्दमयी गुफाऐं हैं।[1] लोकगीतों में समस्त लोक का व्यक्तित्त्व उभरकर आ जाता है। प्रत्येक मानस को वह अपना ही गीत महसूस होता है। इनकी एक अलग पहचान और मिठास है। इस सम्बन्ध में रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं कि ग्रामगीत प्रकृति के उद्‌गार हैं। इसमें अलंकार नहीं केवल रस है, छंद नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं केवल माधुर्य है। सभी मनुष्यों के स्त्री–पुरूषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठ कर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही ग्राम्य गीत है।[2] इसी प्रकार देवेन्द्र सत्यार्थी कहते हैं कि लोकगीत हृदय से खेत में उगते हैं। सुख के गीत उमंग के जोर से जन्म लेते हैं लेकिन दुःख के गीत खौलते हुए लहु से पनपते हैं और आँसुओं के साथी बनते हैं।[3] अधिकाशतः लोकगीत स्थानीय लोगों द्वारा बनाये जाते हैं, जिन्हें वे ही गाते हैं। इन लोकगीतों में स्थानीय लोगों के रहन–सहन, संस्कृति, कठिन परिस्थितियों और सम–सामयिक विषयों, समाज में व्याप्त असमानताओं आदि पर तीक्ष्ण व्यंग देखने को मिलते हैं।[4] लोकगीतों को हृदय में तन्मय करने के लिए लय (झंकार) की आवश्यकता होती है, फलस्वरूप वादों का प्रयोग आरम्भ हुआ। प्रातःकाल जब महिलाऐं चक्की चलाती हैं तो उसकी घरघराहट ही उनके स्वर में मिलकर वाद्य का रूप धारण कर लेती है। गाड़ी हांकने वाला व्यक्ति बैलों की घंटियों और खुरों की आवाज में ही अपना स्वर मिला लेता है। बर्तन मांजने वाली स्त्री बर्तनों की खनखनाहट को ही अपने गीत का माध्यम बना लेती है। इसी प्रकार कुमाऊँनी महिला बरसात की झड़ी और गाड़–गधेरों (नदी–नालों) की सूँ–सूँ की आवाज को अपने स्वरों में ढालकर गीत का माध्यम बना लेती है। इस प्रकार प्रत्येक स्थान पर गाने वाले के लिये वाद्य उपस्थित पाये जाते हैं। काठ की लकड़ियों, लोहे के चिमटों को छोड़कर धोबी जाति के लोग सूप और गागर बजाते हैं। दीपावली के दिनों में अहीर लम्बी बांस बजाते हैं। दीपावली के दिनों में अहीर लम्बी छड़ियों का प्रयोग करते हैं। भिखारियों में खंसरी, किंगरी और इकतारे को वाद्य रूप में सम्मान मिला है।[5] मैदानी गायकों का सबसे प्रिय वाद्य करताल है। पौराणिक गाथाओं में भी हम वाद्यों को किसी न किसी रूप में विद्यमान पाते हैं। शिव डमरू बजाते थे जो आज तक लोकवाद्य बना हुआ है। इसका प्रयोग नेपाल तथा उसके तराई प्रान्त के लोक जीवन में मिलता है। विष्णु के हाथ में शंख मिलता है जिसे बजाकर विष्णु ने प्रथम नाद उत्पन्न किया था। रामायण काल में रावण, संगीतज्ञ था। यह प्रसिद्ध है कि वह शिव के नृत्य के समय मृदंग बजाया करता था। इसी प्रकार किम्वदन्ती है कि ब्रह्मा ने ढोल की रचना त्रिपुर राक्षस के रक्त से मिट्टी सानकर (मिलाकर) तथा उसी चमड़े से मढ़कर की थी। सामवेद को आदि संगीत का मूल स्रोत माना जाता है। सामवेद का उपवेद गन्दर्भवेद है। जिसमें सोलह हजार राग–रागनियों का उल्लेख है। लोक जीवन में आनन्द और उत्साह बढ़ाने के लिए लोकगीतों की प्राचीनता के बारे में गोविन्द चातक का कहना है कि यदि 600 ई. पूर्व भारतीय बोलियों का काल माना जाय तो कुमाऊँनी लोक गीतों की परम्परा बहुत पुरानी मानी जा सकती है।[6] यहाँ के लोकगीत अपनी युगभावना को भी प्रकट करते हैं। घटना प्रधान गीतों के आधार पर उनके रचना काल का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। प्रारम्भिक काल के धार्मिक गीतों में ऐतिहासिक युग के प्रथम चरण की छाप स्पष्ट तौर पर देखी जा सकती है। उसके बाद के गीत वीर रस प्रधान गीतों में वीरगाथा काल और सामंतीयुग का प्रभाव तथा तद्‌नन्तर के श्रृंगार गीतों एवं कूटनीतियों षड़यन्त्रों के वर्णनों से भरे गीतों व गाथाओं में चंद एवं परमार युग के समाज तथा राजकीय स्थिति द्वारा किया जाता अत्याचार तथा सामाजिक कठिनाईयाँ हैं। इस प्रकार यहाँ के लोकगीत प्रत्येक युग का सामाजिक इतिहास प्रस्तुत करते हैं। जैसे कि पांडव गीत तथा क्षेत्रपाल आदि देवताओं के संस्कृति के आरम्भिक स्तर की ओर संकेत करते हैं। ऐसे ही अनेक गीत उस युग की पूजा इत्यादि परम्पराओं के परिचायक भी हैं। जैसे–

देव खतेरपाल, घड़ी–घड़ी का विध्यन टाल,
मात महाकाली का जाया
चंड भैरों खेतर पाल

*शोध छात्रा, इतिहास विभाग, डी0एस0बी0 परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

प्रचंड भैरों खेतर पाल
काल भैरों खेतर पाल
माता महाकाली का जाया
बूढ़ा रूद्र का जाया
तुमरो ध्यानो जागो।[7]

कुमाऊँ प्रदेश देवताओं की क्रीडा स्थली है। यहाँ गिरिराज हिमालय बसा है, जो प्राकृतिक सुषमा का अपार भण्डार है। पक्षियों का कलरव, अलियों का गुंजन, बादल का गर्जन, पिक की तान आदि का जैसा रसास्वादन सहृदय इस स्थली में करते हैं, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। अपनी सौंदर्य सुषमा से युक्त का यह प्रदेश जिस प्रकार से अपना अलग ही महत्त्व रखता है, उसी प्रकार यहाँ के लोकगीतों पर भी यहाँ के सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब झलकता है। लोकगीत चाहे किसी भी भूखण्ड के हों अपनी स्वाभाविकता, सरलता, ओजस्विता तथा बोधगम्यता से विशिष्ट होते हैं, किन्तु इन सभी गुणों का सजीव वर्णन कुमाऊँ के लोकगीतों में पूर्णतः पाया जाता है। लोकगीत सभी प्रदेशों के मधुर और रसयुक्त होते हैं, किन्तु प्रकृति के साहचर्य से युक्त कुमाऊँ के लोकगीतों का अलग स्थान है।[8]

कहा भी गया है कि लोकगीत सभी सुन्दर होते हैं, पर हिमालय के केन्द्र में वह अपनी प्रकृति की तरह अति सुन्दर हैं। यद्यपि कुमाऊँ शहरी चमक–दमक से दूर है। इस प्रदेश का जीवन अति सरल है। पर्वतीय क्षेत्र तथा शहरी सुविधाओं से दूर होने के कारण यहाँ का जीवन कठोर तथा परिश्रम युक्त है। इस प्रकार एक ओर यहाँ प्रकृति का उल्लासमय, कोमल वातावरण है तो दूसरी ओर जीवन में कठोरता की भी अधिकता है। इस कठोरता एवं कोमलता से युक्त भावों की अभिव्यक्ति यहाँ के लोकगीतों में हुई है। कुमाऊँनी लोक साहित्य के सभी विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से कुमाऊँनी लोकगीतों के वर्गीकरण में छपेली, न्यौली, चांचरी, भगनौल, झोड़ा, बैर, ऋतुगीत, बालगीत, कृषिगीत, देवता के गीत तथा त्यौहार गीत को रखा।[9] इसी प्रकार कृष्णानन्द जोशी ने कुमाऊँनी लोक गीतों का वर्गीकरण किया है। जैसा कि धार्मिक गीत, मेलों के गीत, बाल गीत, ऋतुगीत, कृषि सम्बन्धी गीत, परिसंवादात्मक गीत आदि।[10] भवानी दत्त उप्रेती ने कुमाऊँनी लोकगीतों के वर्गीकरण में संस्कार गीत, ऋतुगीत, बालगीत, उत्सव गीत, जातिमूलक गीत, व्यवसाय मूलक गीत को रखा है।[11] कुल मिलाकर देखा जाय तो कुमाऊँनी लोकगीत स्थानीय जीवन के उल्लास, उमंग, करूणा तथा रूदन की कहानियों को चित्रित करते हुए प्रतीत होते हैं।

लोकगीतों में हास्य एवं व्यंग की भावनाएँ भी निहित रहती हैं। हास्य एवं व्यंग की झलक निम्नलिखित गीतों में देखने को मिलती है–

दिदि मेरी बड़ी हौ सिया, भिन मेरो उजड़ा।
दिदि चिवैंछ भलि पगार, भिन पाइन न्छ खड़ा।।
दिदि ब्वैंछ भल बिंया, भिन ब्वैंछ भूसा।
दिदि मेरी हंस मुखिया, भिन भरिया गुसा।[12]

जहाँ लोकगीत हास्य एवं व्यंग को प्रस्तुत करता है वही कुमाऊँनी लोकगीत स्थानीय जीवन के विभिन्न स्वरूपों (उल्लास, उमंग, करूणा, रूदन आदि) को प्रकट करते हैं–

हो गोरि गोरी धनां, बाजार बेचना ल्यायै अलुपता बगेड़ी आ आमा,
गोरि गोरि धनां कौतिकिया, भौते छन अलुपाता मेरी राख्यैं फामां।
गोरि गोरि धनां पानि लाग्यो बजाजानि अलुपाता भैंस लाग्यो खुनखुनी,
गोरि गोरि धनां खाती माया ख्याड़ा हलनी हाली अलुपाता न निरगुनी ।
गोरि गोरि धनां त्यारा गावां होली कि मूंगा माला अनुपता कि गौलबंद,
गोरि गोरि धनां कि इजु लै माया मारि कि अलुपता बाहुली बंद।[13]

कुमाऊँनी लोकगीतों में विवाह–संस्कार गीत व राष्ट्रीय भावना से सम्बन्धित उद्‌गारों को भी व्यक्त किया है। प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू के निधन पर कुमाऊँ के लोक कवियों ने शोकाकुल हदय से कारूणिक उद्‌गार प्रकट किये–

कलेजी का चीरा हैगी, हिया का बेहाल
आँखिम रटैण लैरी, जवाहर लाल।

इसी प्रकार इन्द्रिरा गाँधी के प्रधानमंत्री बनने पर नव जागरूक कवि गा उठता है–

हल हला आम
इन्द्रिरा गाँधी का हाथ देशै की लगाम[14]

यहाँ के गायकों ने लोक गाथाओं और कथाओं पर गाकर जन जीवन में अमिट छाप छोड़ी । कुमाऊँ के राजा मालूशाही व राजुली की प्रेम गाथाओं की इन लोकगीतों के माध्यम से गायकों ने बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति की है। कुमाऊँ का इतिहास एक प्रकार से इन लोक गीतों में छिपा है। हिन्दी साहित्यकार शिवानी ने कुमाऊँ के संस्कार गीतों के सम्बन्ध में इस ओर संकेत किया है कि उनकी भाषा अधिकाशतः ब्रज है। वे यह मानती हैं कि ये गीत सम्भवतः ब्रजक्षेत्र से कुमाऊँ में प्रचलित हुए होंगे।[15] अंत में यह कहना चाहेंगे कि वास्तव में ये गीत मानव मन की एकता और भारतीय संस्कृति के एकता के प्रतीक हैं। इन गीतों की विशिष्टता इनकी अनोखी लयकारी में है, जो अनमोल निधि की भाँति युगों–युगों से दादी–नानी की पीढ़ियों से ग्रहणकर अगली पीढ़ी द्वारा सुरक्षित रखी जाती रही हैं। आज के सिनेमाई युग में इन्हें सुरक्षित रखने की और भी अधिक आवश्यकता है। कुमाऊँ में लोक गीतों की यह परम्परा तब तक जीवित है जब तक मनुष्य का अस्तित्व है।

सन्दर्भ सूची

1. पोखरिया देवसिंह, लोक संस्कृति के विविध आयाम : मध्य हिमालय के सन्दर्भ, पृ 13।
2. पोखरिया देवसिंह, पृ 13।
3. सत्यार्थी देवेन्द्र, धरती गाती है, पृ 107।
4. चौहान विद्या, लोकगीतों की पृष्ठभूमि, पृ 10।
5. बलूनी दिनेशचन्द्र, उत्तरांचल : संस्कृति, लोकजीवन, इतिहास एवं पुरातत्व, पृ 35,36।
6. चातक गोविन्द, भारतीय लोक संस्कृति सन्दर्भ : मध्य हिमालय, पृ 22।
7. भट्ट दिवा, उत्तराखण्ड की लोक साहित्य परम्परा, पृ 23,24।
8. उपलब्धि, 1979, पृ 54,55।
9. पाण्डे त्रिलोचन, कुमाऊँ का लोक साहित्य, पृ 74।
10. पोखरिया देवसिंह, पृ 14।
11. उप्रेती भवानी दत्त, कुमाऊँनी लोक साहित्य एवं गीतकार, पृ 16।
12. स्मारिका, अल्मोडा, 1973, पृ 192 ।
13. वर्मा ललित कुमार, कुमाऊँ के मेले, पृ 30।
14. चंदोला सरला, उत्तराखण्ड का लोक साहित्य और जनजीवन, पृ 121–122।
15. पोखरिया देवसिंह, पृ 25।